Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

द्रष्टा समाजसुधारक : कन्दुकुरी वीरेशलिंगम और महात्मा जोतीराव फुले

डॉ. प्रमोद भगवान पडवल
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मराठी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
ईमेल पता : pbpadwal@gmail.com

सारांश

परकीय सत्ता की दासता से मुक्ति पाने के लिए आज़ादी के संग्राम में शामिल नेताओं का जिस प्रकार से योगदान रहा है, उसे जनता कभी भी भूल नहीं सकती। लेकिन हमें यह बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए कि समाज-सुधारकों ने भी स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए अपार परिश्रम किया है। आज़ादी के सैनिकों की लड़ाई सीधे विदेशी ताक़तों के विरुद्ध थी, इसलिए उन्हें भरपूर सहानुभूति मिली। किन्तु समाज-सुधारकों का संघर्ष अपने ही देश के नागरिकों के साथ था, इसलिए उन्हें न सहानुभूति मिली और न ही सहयोग। आज हम एक स्वतंत्र देश के नागरिक हैं। अर्थात् एक लड़ाई की समाप्ति हो चुकी है, परन्तु स्वराज्य को सुराज्य में परिवर्तित करने का कार्य अभी भी शेष है। ऐसे में हम लोगों के लिए समाज-सुधारकों के कार्यों का स्मरण कर उनके बताए मार्ग पर चलना अनिवार्य हो गया है। नई पीढ़ी को समाज-सुधारकों की भूमिका, दृष्टिकोण तथा कार्य-पद्धति की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत लेख में कंडुकुरी वीरेशलिंगम और महात्मा फुले के कार्यों का परिचय कराया गया है।

बीज शब्द - समाजसुधारक, सामाजिक सुधार, स्त्री शिक्षा, अंधविश्वास का विरोध, जातिप्रथा का विरोध , स्वस्थ समाज निर्माण।

कंडुकुरी वीरेशलिंगम, जिन्हें कंडुकुरी वीरेशलिंगमपंतुलु नाम से भी जाना जाता है, का जन्म 16 अप्रैल 1848 को आंध्र प्रदेश के राजमुंदरी में एक सनातन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सुब्बा रायडु तथा माता का नाम पूर्णम्मा था। जब कंडुकुरी मात्र छह माह के थे, तब वे स्मॉलपॉक्स (चेचक) नामक बीमारी से ग्रसित हो गए। उनके चार वर्ष की आयु में ही पिता का निधन हो गया, जिसके पश्चात् उनके चाचा ने उनका पालन-पोषण किया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा भारतीय परंपरागत विद्यालय में हुई, तत्पश्चात वे अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालय में प्रविष्ट हुए। वहाँ उनकी प्रतिभा निखरकर सामने आई। उनके स्वभाव तथा अध्ययन में असाधारण क्षमता को देखकर विद्यालय के होनहार विद्यार्थियों में उनकी गणना होने लगी। उन्होंने 1869 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और कोरांगी में अध्यापक की नौकरी प्राप्त की। कुछ वर्षों पश्चात वे प्रधानाचार्य बने। इसके बाद वे धवलश्वरम में प्रधानाचार्य नियुक्त हुए।

कंडुकुरीजी तेलुगु समाज में मौलिक परिवर्तन के लिए आजीवन समर्पित रहे। उन्होंने सदैव असत्य का विरोध किया और दृढ़ संकल्प के साथ समाज के उत्थान के लिए सतत प्रयास करते रहे। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय रहते हुए उन्होंने महिला शिक्षा तथा विधवा पुनर्विवाह के क्षेत्र में असाधारण कार्य किया। उनके द्वारा 1874 में धवलश्वरम में बालिकाओं के लिए एक विद्यालय की स्थापना की गई। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। 'विवेकवर्धिनी' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने ज्ञान-प्रसार का विशेष कार्य किया। इस पत्रिका में महिला उत्थान, अंधविश्वास की आलोचना तथा भ्रष्टाचार जैसे विषय प्रमुख रहे। यह पत्रिका प्रारंभ में मद्रास (वर्तमान चेन्नई) से प्रकाशित होती थी, परंतु बाद में कंडुकुरीजी ने राजमुंदरी में अपना स्वयं का मुद्रणालय स्थापित किया और वहीं से इसका प्रकाशन होने लगा।

1878 में उन्होंने 'सतिहितबोधिनी' नामक पत्रिका का भी शुभारंभ किया, जिसमें वे महिलाओं के अधिकारों के पक्ष में निरंतर लिखते रहे। उन्होंने देवदासी प्रथा के विरुद्ध भी संघर्ष किया। उनके द्वारा स्थापित संस्था के माध्यम से 11 दिसंबर 1881 को पहला विधवा विवाह संपन्न कराया गया। समाज के एक वर्ग ने इसका तीव्र विरोध किया, किंतु समय के साथ कंडुकुरीजी समाज में दृष्टिकोण-परिवर्तन लाने में सफल रहे।

कंडुकुरीजी के समाज-सुधार संबंधी कार्यों की सराहना विदेशों में भी हुई। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने भी उनके कार्यों की प्रशंसा की। उन्होंने 'विधवा अनाथालय' की स्थापना की, जिसका रूढ़िवादी विचारधारा वाले लोगों ने विरोध किया। वे बालविवाह और दहेज प्रथा के विरुद्ध आजीवन संघर्षरत रहे। 1884 में उन्होंने बालिकाओं के लिए दूसरा विद्यालय खोला। उनके समाजसेवी कार्यों की सराहना करते हुए सरकार ने 1893 में उन्हें प्रतिष्ठित 'रायबहादुर' की उपाधि से सम्मानित किया। ब्रह्मसमाज के कार्यों से कंडुकुरीजी अत्यंत प्रभावित रहे। राजा राममोहन राय की विचारधारा और सिद्धांतों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा, इसलिए उन्होंने उन्हें अपनाया। ब्रह्मसमाज के पदचिह्नों पर चलते हुए वीरेशलिंगम ने 1887 में राजमुंदरी में ब्रह्म मंदिर की स्थापना की। सन 1908 में उन्होंने राजमुंदरी में 'हितकारिणी स्कूल' की स्थापना की। इसी वर्ष समाज-सेवा के उद्देश्य से उन्होंने अपनी सम्पूर्ण संपत्ति और जायदाद दान कर दी।

कंडुकुरीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। तेलुगु, अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषाओं पर उनकी समान पकड़ थी। तेलुगु भाषा में उन्होंने निबंध, जीवन-चरित्र, आत्मकथा तथा उपन्यास विधा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके अनेक नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। डी. अनजनेयुलु अपनी पुस्तक 'कंडुकुरी वीरेशलिंगम' में लिखते हैं

"Veeresalingam's Interest social reform was almost as old as his belief in a just and benign Providence. If all were equal in the eyes of the Creator, there could be no room for in-equality or injustice in human society. Whether it was as a schoolmaster or as a journalist, his general outlook on society and his basic approach to its problems were the same. Reason and common sense were his staff and torch in his march along the road of progress. When he believed something to be right, he did not hesitate to speak it out m public. His expressions were never at variance with his beliefs. He made full use of the method of example as well as that of precept. Here was a perfect harmony of thought, word and deed."

उनका मानना था कि यदि सृष्टिकर्ता की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं, तो मानव समाज में असमानता या अन्याय के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। उनकी दृष्टि सदैव उदार और मानवतावादी रही। कंडुकुरीजी का पारिवारिक जीवन भी अत्यंत समृद्ध था। सन 1861 में, जब वे तेरह वर्ष के थे, उनका विवाह बापम्मा राजलक्ष्मी से हुआ। उस समय राजलक्ष्मी मात्र आठ वर्ष की थीं। कंडुकुरीजी के जीवन और सामाजिक कार्यों में राजलक्ष्मी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। वे पति के सभी सामाजिक कार्यों में सदैव उनके साथ रहीं। जीवन में अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करते समय उनकी पत्नी निडरता से उनके साथ खड़ी रहीं। सन 1885 में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में कंडुकुरीजी सदस्य के रूप में उपस्थित थे। 27 मई 1919 को इस महान समाज-सुधारक का देहावसान हो गया और उनका पार्थिव शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया। यद्यपि वे आज हमारे बीच नहीं हैं, किंतु अपने विचारों और कार्यों के माध्यम से वे आज भी हमें मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

वीरेशलिंगम कंडुकुरी के समकालीन महात्मा जोतीबा फुले का जन्म 11 अप्रैल 1827 को महाराष्ट्र के पूना नगर में हुआ था। देश के अलग–अलग प्रांतों से उभरी इन दोनों विभूतियों की विचारधाराओं में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं। जब फुले सात वर्ष के थे, तब उनका प्रवेश मराठी माध्यम की पाठशाला में हुआ। चार वर्षों के

पश्चात किसी कारणवश उनकी शिक्षा बाधित हो गई। बाद में 1841 में उन्हें स्कॉटिश मिशन स्कूल में प्रवेश मिला। शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत वे परमहंस सभा के संपर्क में आए। सत्यनिष्ठा, नैतिकता, जाति-प्रथा और अस्पृश्यता का विरोध, महिला शिक्षा, प्रौढ़ विवाह तथा पुनर्विवाह का समर्थन जैसे विचारों ने महात्मा फुले को गहराई से प्रभावित किया। सन 1848 में ही फुले ने यह निश्चय कर लिया था कि सार्वजनिक जीवन अपनाकर वे महिलाओं और शोषित वर्गों के लिए शिक्षा के प्रसार का कार्य करेंगे।

शिक्षा की महत्ता को रेखांकित करते हुए महात्मा फुले कहते हैं-

'विद्येविना मती गेली, मतीविना नीती गेली,

नीतीविना गती गेली, गतीविना वित्त गेले,

वित्ताविना क्षूद्र खचले,

इतके सारे अनर्थ एका अविद्येने केले।'

अर्थात् शिक्षा के बिना बुद्धि नष्ट हो गई, बुद्धि के बिना नैतिकता समाप्त हो गई, नैतिकता के बिना प्रगति रुक गई, धन के अभाव से शोषित वर्ग बर्बाद हो गया; इतने सारे अनर्थ केवल अशिक्षा के कारण हुए। इस प्रकार महात्मा फुले शिक्षा की महत्ता को स्पष्ट करते हैं। वे जानते थे कि मानव समाज की समस्याओं की मूल जड़ अज्ञानता है। यदि अज्ञान दूर किया जाए, तो मानव जीवन काफी हद तक सुव्यवस्थित हो सकता है। समाज का एक तथाकथित छोटा वर्ग किस प्रकार बहुसंख्यक समाज का शोषण करता है, यह महात्मा फुले ने बहुत निकट से देखा था। शोषित लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए उन्हें शिक्षित करना अत्यंत आवश्यक है यह वे भली-भाँति समझते थे। इसी कारण 1848 में उन्होंने पूना में बालिकाओं के लिए पहला विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय में उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने अध्यापन कार्य किया। महात्मा फुले एक महान समाज-सुधारक, विचारक और कर्मठ कार्यकर्ता थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने शिक्षा-प्रसार, कृषि-सुधार, जाति-व्यवस्था का विरोध तथा महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार जैसे विषयों पर निरंतर संघर्ष किया। विशेष रूप से महिलाओं और निचले वर्गों के कल्याण के लिए उन्होंने निःस्वार्थ भाव से कार्य किया। समाज को कुरीतियों और अंधश्रद्धाओं के जाल से मुक्त कराने के लिए उन्होंने भरपूर प्रयास किया।

ब्राह्मणांचे कसब, गुलामगिरी, शेतकऱ्याचा असूड, इशारा तथा सार्वजनिक सत्यधर्म महात्मा फुले की प्रमुख रचनाएँ हैं। वे अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध करते रहे। 24 सितंबर 1873 को महात्मा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य सामाजिक असमानता को समाप्त करना और शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना था। वे सत्यशोधक समाज के प्रथम अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष भी थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कंडुकुरी वीरेशलिंगम और महात्मा जोतीराव फुले ये दोनों समकालीन महापुरुष भारत के अलग-अलग प्रांतों में रहकर समाज-सुधार का व्रत निभाते रहे। दोनों ने आजीवन शोषित और वंचित वर्गों की सेवा की। उनकी पत्नियों ने भी उनके कार्यों में पूरा सहयोग दिया। कंडुकुरी वीरेशलिंगम और महात्मा जोतीराव फुले उन्नीसवीं सदी के महान समाज-सुधारक, समाज-प्रबोधक, विचारक, लेखक और दार्शनिक थे। इसलिए वे आज भी वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा के अक्षय स्रोत हैं।

संदर्भ साहित्य :-

1. महात्मा फुले साहित्य आणि चळवळ, संपादक : हरी नरके, महात्मा जोतीराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती, महाराष्ट्र शासन, मुंबई, आठवी आवृत्ती, २०१८.

2. महात्मा फुले समग्र वाङ्मय,संपादक : हरी नरके,महात्मा जोतीराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती, महाराष्ट्र शासन, मुंबई, प्रथम आवृत्ती, २०१३.
3. Veerasalingam: by V.R. Narala; Sahitya Akademi, New Delhi, 1968.
4. Builders of Modern India, KandukuriVeeresalingam, D.Anjaneyulu, Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1976.

महात्मा फुले (जन्म : ११ अप्रैल 1827 – मृत्यु : 28 नवम्बर 1890)	**कन्दुकुरी वीरशलिंगम** (जन्म :16 अप्रैल 1848 - मृत्यु : 27 मई 1919)